

सर्व जिनागम पीडीएफ ग्रुप



स्वाध्याई बंधुओ तक
अवश्य पहुंचाए
निवेदक: सौरभ जैन

जैन एकता मंच



हम
सब
एक
हैं



सर्व जिनागम पीडीएफ ग्रुप

9993602663/7722983010

जैन साहित्य एवं मंदिर

उपकरण

हमारे यहाँ सभी प्रकार का दिगंबर जैन एवं भारत के सभी प्रमुख धार्मिक संस्थानों का सत साहित्य एवं मंदिर में उपयोग हेतु उपकरण और प्रभावना में बाटने योग्य सामग्री सीमित मूल्य पर उपलब्ध है !

(पांडुशिला, सिंघासन, छत्र, चंवर प्रातिहार्य, जापमाला, मंगल कलश, पूजा बर्तन चंदोवा, तोरण, झारी)



शुद्ध चांदी के उपकरण ऑर्डर पर निर्मित किये जाते हैं।

नोट :- हमारे यहाँ घरों में उपयोग हेतु, साधुओं के उपयोग हेतु, अनुष्ठानों में उपयोग हेतु शुद्ध देशी घी भी ऑर्डर पर उपलब्ध कराया जाता है !

सौरभ जैन (इंदौर)
9993602663
7722983010

सभी दिगंबर जैन ग्रंथों की पीडीएफ प्रतिदिन निशुल्क प्राप्त करने के लिए संपर्क करें



जय जिनेन्द्र



गाय का शुद्ध देशी घी

शुद्धता पूर्वक बनाया गया देशी घी
चातुर्मास में साधु ब्रती एवं धार्मिक
अनुष्ठानों को ध्यान में रख कर
बनाया गया शुद्ध देशी घी

घी ऐसा की दिल
जीत जाये



संपर्क:-CALL &
WHATSAPP:
9993602663
7722983010







श्री हरिप्रसाद शर्मा

भगवान महावीर और श्रीषष्ठ विज्ञान



लेखक

मुनि दर्शन विजय जी (त्रिपुटी)



प्रकाशक

मंत्री : भीखा भाई भूषर भाई कोठारी, मुंबई
चंदुलाल लखु भाई परित, अहमदाबाद

कार्य स्थान

पञ्चाल मन्थुवाई परीस

मैत्री : श्री चारित्र्य स्मारक

ग्रन्थमाला

नागर्जाभूधर की पोल

माइवी की पोल

मु० अहमदाबाद

श्री मनमुख लाल भाई

(1) छगनलाल जैकिशन

दाम जरीवाला

किनारी बाजार, चादनी चौक

मु० देहली-६

बीर सं० २४८३

बि० सं० २०१४

इ० म० १६५७

क० जा० सं० ३६

अर्थ महायुक्त

इस ग्रन्थ को श्री तपानन्द जीन धारिका सच ने अपने
ज्ञान ज्ञाता के दृश्य से व्यवसाय है अतः उनको धन्यवाद !

—प्रकाशक

मुद्रक—कनूकी प्रिंटिंग वर्क्स बाम्ना मस्जिद, दिल्ली

‘बन्धे बोरम् धी चारित्र्यम्’

स्वतन्त्रता की गोद में

समय परिवर्तनशील है। शताब्दियों का परतंत्र भारत आज स्वतंत्रता की श्वासे ले रहा है तथा प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है।

भारत एक धर्मप्रधान देश है, सत्य और अहिंसा की जन्म भूमि है। इसी धर्म-वसुन्धरा पर भारत की सर्वोच्च विभूति भगवान् श्री महावीर का जन्म हुआ। सत्य, अहिंसा अभयदान व अनेकान्तवाद इत्यादि उन्होंने विश्व को प्रदान किये समस्त संसार इस बात को अंगीकार करता है कि भगवान् महावीर मनमा वाचा कर्मणा अहिंसा के प्रपालक थे। परन्तु। कुछ मांसाहार प्रचारक उन भगवान् महावीर के ऊपर मन गदन्त लाल्छन लगाने पर तुले हुए हैं।

श्री धर्मानन्द कौमन्वी पाली-भाषा और बौद्ध-साहित्य के प्रकाण्ड पंडित थे। ‘भगवान् बुद्ध’ पुस्तक में उन्होंने भगवान् महावीर के ऊपर मामाहार का कल्पित आरोप लगाया है और उसको प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है। जैन दर्शन का व प्राकृतभाषा का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण ही उन्होंने कथित पाठ का गलत अर्थ लगाया है उन्होंने कारुण्यमूर्ति ‘श्री गौतम बुद्ध’ को मामाहारी कहा है तथा ब्राह्मणों को भी गौ-मांस भक्षक बताया है।

हिन्दू धर्म की 'मदर इंडिया' तथा श्री कौसम्बी का 'भगवान् बुद्ध' आदि पुस्तक मरामर बिष साहित्य है। ऐसी पुस्तकों को म्यायित्व प्रदान करना शील और सत्य का गला घोटना है। भारत सरकार ने सत्य और अहिंसा का बीड़ा उठाया है। भारत सरकार की साहित्य अकादमी ने 'भगवान् बुद्ध' ग्रन्थ को प्रकाशित किया। सत्य और अहिंसा के प्रणेता के लिये वह कार्य अशोभनीय है।

इस पुस्तक का प्रतिवाद करना सत्य प्रेमियों के लिये अनिवार्य हो जाता है। यह 'भगवान् महावीर और औषध विज्ञान' पुस्तक प्रस्तुत है। इस में मप्रमाण स्पष्ट किया गया है कि भगवान् महावीर ने मांसाहार नहीं किया बल्कि बिजौरा पाक औषध के रूप में सेवन किया था। यह निर्णय केवल वैद्यक-ग्रन्थों और कोषों पर ही आधारित नहीं है बल्कि महापुरुषों की निर्दोष आहार चर्या, रोगशामक द्रव्य, प्रासंगिक परिस्थिति, तत्कालीन भाषा, परिभाषा, जैनो का अहिंसा का पक्षपात और जैन श्रमणों की आहार शुद्धि इत्यादि से भी सिद्ध है। कोई भी गम्भीर साहित्य-चिंतक इस पुस्तक को पढ़ कर समझ सकता है कि भगवान् महावीर पर मांसाहार का आरोप ~~असहिष्णुता~~ की पराकाष्ठा है।

संसार में भारत का ऊँचा स्थान है। वह सत्य और अहिंसा का पक्षपाती है। Religious Leaders (धार्मिक नेता) पुस्तक के प्रकाशित होने पर जो विवाद चला इस के सम्बन्ध में अल्पसंख्यकों की भावनाओं का आदर कर जनता के सामने अपनी न्याय-प्रियता का परिचय दिया है। हाल ही

मे 'मरिता' के जुलाई अंक को जलत करके सरकार ने एक बार फिर अपनी मृत्यु परायणता का उद्घोष किया है। इसी प्रकार 'भगवान बुद्ध' सम्बन्धी विवाद पर सरकार ऐसा ही कदम उठा कर अहिंसा प्रेमी जनता के सामने शुद्ध न्याय का परिचय देगी। इसी में भारत आज गौरवान्वित हो रहा है।

अन्त में साहित्य अकादमी अपने दोहरे माप दण्ड को छोड़ें और एम साहित्य को सदैव के नियम अशान्ति जनक करार दे। इसी में भारत की प्रतिष्ठा निहत है। मैं इस मनोकामना के साथ प्रस्तावना को समाप्त करता हूँ।

सर्वपि सुखिन सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्व भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् पापमाचरेत् ॥

म० २०१४
भा० शु० ४ बुधवार
ता० २८-८-५७
देहली

लेखकः
मुनिदर्शन विजय

❀ नोट—

यह प्रतिवाद कौशाम्बोजो की विद्यमानता में वि.मं. २००० (इस्वी १९४३) में हमारी श्वेताम्बर-दिगम्बर-समन्वय पुस्तक में प्रकाशित हो चुका है। फिर भी भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त साहित्य अकादमी उस विषय साहित्य को पुनः प्रकाशित करके जनता के सामने रखती है। यह नीतिसंगत नहीं है।

—मुनि दर्शन विजय

भगवान् महावीर

और

औषध विज्ञान

अध्याय १

नमो दुर्वार रागादि वैरिवार निवारिणे ।

अर्हते योगिनाथाय, महावीराय तायिने ॥१॥

भारत के धर्मों में जैन धर्म ही एक ऐसा धर्म है जो कि मांसाहार का सर्वथा निषेध करता है। जैन धर्म के अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर बड़े तपस्वी थे, अहिंसा की साक्षात् मूर्ति थे। उनकी मौनिक अहिंसा से उनके शासन में प्रवेश करने वाला इतना प्रभावित होता था कि वह मांस भक्षण का पूर्ण रूपेण त्याग कर देता था। इस कथन के समर्थन में अनेक दृष्टांत जैन आगमों व बौद्ध त्रिपिटकों में पाये जाते हैं। यह स्पष्ट होने पर भी आजकल एक अजीब आपत्ति उठाई जा रही है कि भगवान् महावीर ने मांसाहार किया था। इस विचित्र कल्पना का निरसन करना वास्तविकता की स्थापना करना ही नहीं, वरन् एक आवश्यकता की पूर्ति करना है।

विषय का वास्तविक वर्णन भगवती सूत्र के पन्द्रहवें शतक में है। उसका मार निम्न है :—

जिस समय भगवान् महावीर मेंढिक ग्राम के शाल कोष्ठ उद्यान में पधारे, उस समय उनके शरीर में तेजो लेइया की ऊष्णता से उत्पन्न पित्त-ज्वर का जोर था, रक्त-अतिसार हो रहा था। रोग ने भयंकर रूप धारण किया हुआ था। ऐसी स्थिति को देख कर परमनावलम्बी कहने लगे कि भगवान् महावीर की छः मास की छद्मस्थ अवस्था में ही मृत्यु हो जायेगी। भगवान् का परम अनुरागी मुनि सिंह को, जो कि मालुका वन में तपस्या कर रहा था, जब इस लोक चर्चा का पता चला तो वह बहुत क्षुब्ध हुआ और अपने मन में इस बात की कल्पना करके कि कहीं परमतावलम्बियों का कयन मच न हो जाये, रुदन करने लगा। भगवान् ने तत्काल मुनि सिंह को बुला कर कहा—वत्स सिंह ! तू दुःखी मत हो, मेरी मृत्यु छः महीने में नहीं होगी। मैं १६ वर्ष तक तीर्थङ्कर की अवस्था में जीवित रहूँगा। तथापि, यदि मेरे इस रोग से तुझे दुःख होता है तो एक काम कर। इस मेंढिक ग्राम में गाथापति की पत्नी रेवती रहती है। उसके वहां चला जा। उसने मेरे निमित्त जो औषध बना कर तैयार रखी है, उसे नहीं लाना। केवल उसके वहां रखी पुरानी औषध ले आना। मुनि सिंह भगवान् की आज्ञा पाकर आनन्दित होता हुआ रेवती के घर गया और औषध ले आया। औषध-सेवन से भगवान् का रोग शांत हो गया।

उक्त औषध के लिये प्राकृत भाषा में इस प्रकार लिखा है:—

तत्थं रेवती ए गाहावल्लीए, मम अट्टाए दुवे कळोय
सगीरा उवखडिया, तेहिं नो अट्ठो । अत्थि से अन्ने
पारियासिए मज्जार कडए कुक्कुडमंसए तमारोहि
एएणं अट्ठो । —भगवती सूत्र पन्द्रहवां शतक ।

इस पाठ के प्रत्येक शब्द की व्याख्या की जायेगी । किन्तु इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि २५०० वर्ष पूर्व भगवान् महावीर द्वारा भाषित मागधी-प्राकृत के इन शब्दों के अर्थ या भावार्थ को अनेक प्रकार से संस्कारित स्वकालीन प्रचलित भाषा के शब्दों का पर्याय बना लिया जाय तो यह सरासर भूल है । ऐसी भूल से बचने के लिये प्रारम्भ में निम्न बातों का ज्ञान होना आवश्यक है ।

- (१) जैन सूत्रों की रचना और अर्थ-पद्धति,
- (२) प्राकृत और संस्कृत के अनेकार्थ शब्द,
- (३) वर्तमान काल के कुछ अनेकार्थ शब्द,
- (४) औषध सेवन करने वाले और जुटाने वाले का जीवन संस्कार,
- (५) औषध प्रदान करने वाली स्त्री का व्यवहारिक जीवन;
- (६) रोग, औषध और नियमा नियम का विज्ञान ।

॥ (१) जैन सूत्रों की रचना और अर्थ-पद्धति

जैन भागमों की रचना और अर्थ शैली का इतिहास इस प्रकार मिलता है—

“इह चार्थतोऽनुयोगो हि वा, अपृथक्त्वाऽनुयोगः ~~अपृथक्त्वाऽनुयोगश्च~~ । तत्रापृथक्त्वाऽनुयोगो, यत्रैकस्मिन्नेव सूत्रे सर्वे एव चरन् करणायः प्रकल्पन्ते, अनन्तयम पर्यायार्थकत्वात् सूत्रस्या । पृथक्त्वाऽनुयोगश्च यत्र क्वचित् सूत्रे चरन् करणमेव, क्वचिन्पुनर्यमकथेन वेत्यादि । अनयोश्च वस्तव्यता ।”

“चार्थंति अण्वचद्वारा, अण्वपुस्त कालियाणु प्रोगस्ता ।

तेसारेण पुस्तं कालिघसुय विट्ठि वाए य” ॥७६२॥

(आ० श्री हरिभद्र सूरि कृत दश वैकालिक सूत्र टीका)

अर्थ—आर्यवज्र स्वामी (विक्रम स० १७४) तक जिनागम के अपृथक्त्व यानि चार चार अनुयोग होने थे । गमा, पर्याय और अर्थ अनन्त होते थे, सामान्य व विशेष, मुख्य व गौण तथा उत्सर्ग व अपवाद द्वारा सापेक्ष अनेक अर्थ होते थे । इन के पश्चात् आर्यरक्षित सूरि से जिनागम का पृथक्त्व अनुयोग हुआ अर्थात् द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरण करण अनुयोग अथवा धर्मकथा अनुयोग ऐसा एक एक ही अर्थ रहा ।

आवश्यक नियुक्ति गाथा ७६२-७६३ में भी यही उल्लेख है । कहने का अभिप्राय यह है कि एक एक अनुयोग वाला अर्थ शेष रहने के कारण किसी किसी स्थान पर यदि अर्थ-भ्रम दृष्टिगोचर हो तो वह संभव है । इस अर्थ-भ्रम को दूर करने के लिए तत्कालिन अर्थ शैली का ज्ञान होना चाहिये और अन्वकार के वैज्ञानिक मन्तव्य को समझना चाहिये ।

(२) प्राकृत और संस्कृत भाषा के अनेकार्थ शब्द

प्राकृत और संस्कृत भाषा में वनस्पतियों के कई ऐसे नाम हैं जिनसे सामान्यतः विभिन्न प्राणियों का बोध होता है। जैसे.---

बिल्ली (गा० १६), ऐरावण (२१), गयमारिणी (२२), पचागुली (२६), गोवाली (२६), बिल्ली (३७), मडुक्की (३८), लोहिणी (अस्सकर्ण, सीह कन्नी, सिउडि, मुमुडि) (४३), विरामी (४४), चण्डी (४६) भंगी (४७)
(पन्नवणा सूत्र पद १ सू० २३-२४)

अस्म कर्णी, सीह कर्णी, सीऊँडि, मूसुडि ।

(जीवाभिगम सूत्र प्रति० १ सू० २१ पृ २७)

ऐरावण = लकुचफल । मडुकी (गु०) कोली ।

रावण = तदुक फल । पतंग (हिन्दी) ग्रहुम्रा (गु० महडा) ।

तापसप्रिया = अग्रूर--दाख । कच्छप = नदिजीणी दरखत ।

गेजिह्वा = गोभी । मांसल = तरबूज ।

बिम्बि = कड़ूरी का साग । चतुष्पदी = भिन्डी

(जै० स० प्र० क्र० ४३)

मार्जारि = कस्तूरी । मृगनाभि = मुष्क । हस्ति = तगर (पृ० २८)

अडा = आंवला (पृ० १०६) । मकंटी, वानरी = कौंच (३४३)

वन शुकरी = मुडी (४११), कुकड़ बेल = गुजराती औषधि
(४५६)

लाल मुर्गा = हिन्दी औषधि (५०१), चतुष्पद = भिन्डी (८८६)

मांसफल = तरबूज (६०३)

(शालिश्राम निषष्टु भूषण-६)

जालिन्धर = विलज्ज्वर नाशक औषधि (शब्द सिंधु कोष पृ० ८१७)
रंभा = केले का पेड़, मरकटतंतु (मकड़ी) अमरबेल (शब्द कोश)
लक्ष्मण = प्रसर कटाली, जड़, राम = चिरायता
लक्ष्मी = कालीमिर्च, दास = हल्दी
सीता = मिश्री, पार्वती = देशी हल्दी
ब्रह्मा = पलास पापड़ा, विभिषण = वरकुल मूल
विष्णु = पीपल, रावण = इन्द्रायण तुहरा
शिव = हरड़, महामुनि = अगस्त छाल
अर्जुन = अर्जुनछाल, चन्द्र = बावची
पद्मनाभ = लकड़ी जाति, सूर्य = आक
कृष्ण = गजपीपल, रमा = शीतल मिर्च

(अष्टाभिधान शब्द कोश)

भाव प्रकाश निघण्टु में प्राणी वाचक और प्राणी नाम सूचक अनेक वनस्पतियों का वर्णन है जिन में से कतिपय ये हैं:-

(१) हरितक्यादि वगं में—हरितकी, जीवन्ती = अस्थि-
 मती, पूतना (६ से ११) वैदेही, पिप्पली, (५३) गजपिप्पली
 (६७) चित्रको व्याल (६६) अजमोदा, खराश्वा, च मायुरो
 (७७) बच्चा गोलोमा (१०१) वंशलोचना, वैष्णवी (११७)
 अश्वभो, बृषभो धीरो, विषाणी न् द्राक्ष (१२५) अश्वगन्धा
 (१४३-४५) अदि वृद्धि वाराही (१४३-१५५) कटवी, अशोका
 मत्स्यशकला, चक्रांगी, शकुलादनी मत्स्यपित्ता (१५४)
 इन्द्र यवं, क्वचिदिन्द्रस्य नामैव भवेत्तन्निघण्टुः (१६०)
 नाकुलो (१६८) मयुर बिदला, केशी (१७०) कांगुनी,

पारापतपदी (१७४) शृंगी (२१४) मातुलानी, मावणी,
विजया, जया (२३३), स्वजिका क्षार, कापोत [२५२]

(२) कर्पूरादि वर्ग मे—पतंग (१८-१९), जटायु,
कौशिक (३२) नाग (६६) गोरोचना, गौरी (७६)
जटामासी, तपस्विनी, (८६) पियंगु, विश्व सेनांगनां (१०१)
रेणुका राजपुत्री च नन्दिनीकपिला द्विजा, पाडु पुत्री कौन्ती
(१०४) काक पुच्छ (१०७) कुकुर रोम शुक (१०९)
निशाचरो, धनहर किनवो (१११) ब्राह्मणी देवी मरुन्माला
(१२५) कपोतचरणा नटी (१२६)

(३) गडूच्यादि वर्ग मे —जीवती (७) नागिनी (१०)
जया, जयन्ती (२४) सिंह पुच्छी (३४) सिंही (३६) व्याघ्री
(३८) गोक्षुरः अश्वदष्टा (४४-४५) जीवती जीवनी, जीवा,
जीवनीया (५०) हय पुच्छिका (५५) व्याघ्र पुच्छः (६१)
सिंह तुण्ड वज्री (७५) मातुल (८७) सिंहिका सिंहास्यो
वाजिदन्त (८६-९०) विष्णुकान्ता अपराजिता [१२३] कर्कटी
वायसी, करजा (१२५) काकादनी (१२८) कपिकच्छूः मर्कटी
लांगुली (१३०, १३१) माम रोहिणी (१३३) मत्स्य निषूदन
(१३५) लक्ष्मण (१४१) काकायु (१४६) गौलोमी (१४९)
मत्स्याक्षी-शकुलादनी (१७४) वाराही कौष्टी, (१७६-१७८)
नारायणी (१८२) अश्वगधा, ह्वया हया, बाराह कर्णी (१८७)
बाराहांगी (१९६) जयपाल (२००) ऐन्द्री (२०१) मुन्डी भिक्षुरपि
प्रोक्ता श्रावणी च तपोधना, महा श्रवणिका तपस्विनी (२१४-
२१६) मर्कटी (२१९) कोकी, लाक्षास्तु काकेक्षु. (२२४)

विष्णु (२२५) अस्थि शृङ्खला (२२६) कुमारी गृहकन्या
च कन्या घृत कुमारिका (२३२) कृष्ण बालः कुमारी राज
बलाः (२३८) श्यामा गोपी गोप वधू गोपी गोप कन्या
(२४०-२४१) देवी गोकर्णी (२४८-२४९) काका वायसी
(२५०) काकनासा तु काकांगो, काकतुण्डफला च सा
(२५२) काकजंघा पारापत पदी दासी काका (२५५) राम
द्वीतिका (२५६) हसपादी हंसपदी (२६०) द्विज प्रिया
२६१) वन्दा (२६५) मोहिनी रेवती (२६६) मत्स्याक्षी,
बाल्हीकी, मत्स्यगन्धा, मत्स्यादनी (२७०) सर्पाक्षी (२७१)
शिवा (२८०) मण्डूकी (२८३) कन्या (२८९)
मत्स्यादनी, मत्स्यगन्धा, लांगली (२९६) गोजोव्हा (३००)
सुदर्शना (३१२) आलुकर्णी (३१३) मयुरशिखा (३१५)

(४) पुष्पवर्ग मे पद्मिनी (७) पद्मा (१५) महाकुमारी (२२)
नैपाली (२३) गणिका (२८) पाशुपत, बक (३३) कुब्ज
(३६) माधवी (४०) नट (४७) सहचर दासी (५०-५१)
प्रति विष्णु (५४) बन्धुजीव (५६) मुनिपुष्प, मुनिद्रुम
(५६) गौरी (६१) फणी (६४) मुनिपुत्र, तपोधन, कुलपुत्र
(२६६) बर्बरी (६८)

(५) फलवर्ग में:—कामांग (१) कामराज पुत्र (२२)
रम्भा (३१) दन्तशठ (६०-१३४-१४०) वानप्रस्थ (६४)
गोस्तनी (११०)

(६) वटादि वर्ग में:—जटी (११) अश्वकर्ण (१६२०)
अश्वकर्ण (२१, अजुनवीर (२६-२७) गायत्री, यज्ञियः (३०-३१)

पुत्र जीव (३६-४०) कच्छप (४४) याज्ञिक (४८) कुमारक
(६२) लक्ष्मी (६८) नेमी (७१)

(७) शाक वर्ग में:—शफरी (२४) कुक्कुटः शिल्ली, (३०)
गोजिह्वा (३६) वाराही (१०७)

अनेकार्थ वर्ग में:—अजशृंगी, मेष शृंगी, कर्कट शृंगीच,
ब्राह्मी—ब्राह्मणी, भाङ्गी स्पृक्काच । अपराजिता = विष्णु
कान्ता, शालपणीच, पारातपदी, ज्योतिष्मती काक जंघा च ।
गोलोमी = श्वेत दुर्वा वचा च । पद्मा = पद्म चारिणी, भाङ्गी च
श्यामा सारिवा प्रियंगुश्च । ऐन्द्री = इन्द्र वारुणी, इन्द्राणी च ।
चर्मकषा = शातला, मांस रोहिणी च । रूहा = दुर्वा-मांसरोहिणी
च । सिंही = बृहती वासा च । नागिनी = तांबुली, नाग पुष्पी
च । नटः = श्यो नाकः अशोकश्च । कुमारी = धृत कुमारिका
शत पत्रो च । राजपुत्रोका = रेणुका जाती च । चन्द्र हासा =
गडूची लक्ष्मणा च । मर्कटी = कपि कच्छूः अपामार्गः करेजी
च । कृष्णा = पिप्पली, कालाजाजी, नीली च । मंडूक पर्ण =
श्योनाकः मंजिष्ठा, ब्रह्ममण्डू की च । जीवन्ती = गडूची,
शाक भेदः वृन्दा च । वरदा = अश्वगंधा, सुवर्चला, वाराही च ।
लक्ष्मी = ऋद्धिः वृद्धिः शमी च । वीरः ककुभः वीरणम्
कांकोली च शरश्च । मयुरः = अपामार्गः अजमोदा तुत्थं च ।
रक्त सार = पतंग आदि । बदरा, = वाराही, आदि ।
सुवहा = नाकुली आदि । देवी स्पृक्का मूर्वा कर्कोटी च ।
लांगली = कलिहारी, नागरेकेल, विशल्या
च । चंद्रिका = मेथी, चन्द्र सूरः श्वेत कण्टकारी च ।

अथ शब्दः स्मृतोष्टसु ॥१॥

काकास्थः काकमाची च काकोली काकण्तिका ।

काकजंघा काकनासा काकोदुम्बरिकापि च ॥२॥

सप्तस्वर्णेषु कथितः काकशब्दो विचक्षणैः । ॥२॥

सर्पादिस्वर्णेषु, सीसके नागकेसरे ।

नागवल्यां नागदन्त्यां नागशब्दश्च युज्यते ॥३॥

रसो नवमु वर्तते ॥४॥

चन्द्रलेखा = बकुची इक्ष्वरम् = पित्तल अश्वकर्ण = ईसबगोल

फणी = श्वेतचन्दन पातालनृप = सीसा लक्ष्मी = लोहा

हरि = गुलाल पुरुष = गुगल माद्री = अतीस

नागार्जुनी = दुडी, कद्दू बहुपुत्रा = यवासा राक्षसी = राई

शत्रुमुखा = शतावर मुकुन्द = कुन्दरु कुमारी = धीगुवार

महाबला = सहदेई शकारि = कचनार रक्तबीज = मूंगफली

मुड = सरकंडा लौगली = कलिहारी तरुण = एरण्ड

चंडालिनी = लहमुन उरग = मीसा कृष्णबीज = कालादाना

ताम्रकूट = तमालू

[बम्बई पुस्तक एजेंसी,—कलकत्ता से प्रकाशित—साहित्य
शास्त्री पं० रामतेज पाण्डेय कृत टिप्पणी युक्त, पं० भावमिश्र-
का भाव प्रकाशनिघण्टु : प्रथमा वृत्ति—वि० सं० १९६२]

३. वर्तमान काल के कुछ अनेकार्थ शब्द

आज कल के भी कई प्रचलित शब्द ऐसे हैं जिनका अर्थ,
प्राणी और वनस्पति के प्रसंग में प्रयोग होने पर, विभिन्न हो
जाता है । जैसे :-

वस्त्र	प्राणी बोधक अर्थ	वनस्पति बोधक अर्थ
[१] कुकड़ी	मुर्गी (गुजरात)	भुट्टे
[२] गलगल	गुट्टार पक्षी	बिजौरा
[३] चील	चीन पक्षी (उत्तर प्रदेश)	चील की भाँजी
[४] गील्होड़ी	गिलहरी (उत्तर प्रदेश)	शाक
[५] कवेला		सफेद कोला (पेठा)
[६] पोपटा	बीभत्स अंग (मालवा)	हरा चना (गुजरात)
[७] लज्जालु	स्त्री	छुद्दमुई, पीदे की जाति (गुजरात)

४. औषध सेवन करने वाले और जुटाने वाले

का जीवन-संस्कार

इस औषध को लाने की आज्ञा देने वाले भगवान महा-वीर हैं और लाने वाले पंचमहाव्रत धारक महानपस्वी मुनि श्री सिंह हैं जो मनसा वाचा कर्मणा हिंसा के विरोधी हैं। वे अहिंसा के महान उपदेशक हैं तथा स्वयं उम पर आचरण करते हैं। यदि उपदेशक किसी सिद्धांत की प्ररूपणा करे किन्तु उसे अपने आचरण में न उतारे तो उस सिद्धांत का जनसामान्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। [गौतम बुद्ध ने अहिंसा के सिद्धांत का तो प्रचार किया, किन्तु स्वयं ने मांसाहार का त्याग नहीं किया। फलतः आज भी बौद्ध धर्मावलम्बियों में मांसाहार का प्रचलन है।] भगवान महावीर ने अहिंसा का संदेश दिया और साथ साथ उससे अपने जीवन को भी ओत प्रोत कर दिया व अहिंसा का पूर्णरूपेण पालन किया। इस कारण आज भी जैन धर्म में मांसाहार पूर्ण रूप से त्याज्य है।

केवल यही नहीं, अहिंसा शब्द मात्र का सामान्य वार्ता में प्रयोग होना ही जैन धर्म की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिये पर्याप्त है। यह तथ्य भगवान महावीर के अहिंसामय जीवन का ज्वलन्त प्रमाण है।

भगवान महावीर की वाणी में मांसाहार का सर्वथा निषेध है, जिसके कई पाठ निम्न हैं :-

(१) से भिक्षु वा० जाय समारो से जं पुण जाणेउजा मंसाइयं वा षट्ठाइयं वा मंसकलं वा मच्छकलं वा नो अभिसंधारिज गमणाए ।

(आचारंग सूत्र, निशिय सूत्र)

जैन भिक्षु को यदि कही माम, मछली अथवा उमके छिलके-काटे आदि होने का पता लग जाय तो वह वहाँ न जाये।

(२) अमज्जमंसासिणे ॥ (सूत्र, कृतांग सूत्र अ० २)

जैन साधु मांस-मदिरा का त्याग करें।

(३) ये यावी भूजन्ति तहृष्यंगार, सेवन्ति ते पाबमज्जालमाणा, अलं न एयं कुसलं करन्ती वायावि एसा बुईयाउ मिच्छा ।

(सूत्र कृतांग सूत्र धृत०—२ अ० ६ गा० ३८)

जो मांस-मदिरा का सेवन करते हैं, अज्ञानता से पाप करते हैं, उनका मन अपवित्र है और वचन भी झूठा है।

(४) महारंभयाए न अपरिणाहियाए, कुलिमाहारण पंवेन्द्रिय । बहेलं नेरइयाउय कम्मासरीराप्पयोग नामाए कम्मस्म उवएणं नेरइयाउय कम्मा सरीरे जाय पयोग वग्घे ।

(जी भगवती सूत्र अ० ८ उ० ६ सू०)

जीव चार प्रकार के कामों से नरक में जाने के लिये कर्म बांधते हैं। वह हैं—(१) महापाप का आरम्भ; (२) महा परि-

ग्रह (घनादि संग्रह); (३) पंचेन्द्रिय जीव का वध; तथा
(४) मुग्धे का भक्षण (मांसाहार)

(५-६) अर्थाह ठाणोहि जीवा खेरइत्ताए कम्मं पकरेंति, खेरइत्ताए
कम्मं पकरेत्ता, खेरइएसु उववज्जंति तंजहा—महारंभ बाए महा-
परिग्रह याए, पंचिदियवहेणं कुल्लिमा हारेणं ।

(श्री उववाई सूत्र) (श्री स्थानागं सूत्र स्थान ४)

महारम्भ, महापरिग्रह, मांसाहार व पंचेन्द्रिय वध से बाधे
हुए, कर्म के उदय से नारकी की आयु व नारकी के शरीर
बनते हैं ।

(७) भुजंमारो सुरं मंसं परिवुडे परंभे
अय वक्कर भोई य, तुंविन्ने चियलोहिए ।
आउयं नरए कंत्ते, जहाँ एत्तं व एवए ॥७॥

(उत्तराध्ययन सू० अ० ७ गा० ७)

मदिरा पान, मांस भक्षण, गुडापन आदि से नारकी की
आयु का वध होता है ।

(८) हिसे बाले मुत्तावाई, माईत्ते पित्तुले सडे

भुजंमारो सुरं मंसं, सेय मेयंति मज्झई ॥८॥

तुहं पियाइंमत्ताइं, बांडाह सोल्लणाणिये ।

बाइयो वित्त मवाह, अग्गि वण्णइल्लेग सो ॥९॥

(उत्तराध्ययन सू० अ० ५ गा० ९ अ० १९ गा० ९३)

हिंसक अज्ञ, भूटा, मायावी, चुगलखोर, गठ तथा मांस-
मदिरा भक्षी होता है और समझता है कि यहो जीवन का
आनन्द है ।

तुम्हें यदि मांस, मांस की पकाई हुई फांक प्रिय है तो तुं
भी उसी प्रकार खाया व पकाया जायगा ।

(९) अमज्जमंसांसी, अमज्जरीघा, अभिक्खत्तं निज्जिगइं यथा अ ।
अभिक्खत्तं काउत्तगगारी, सज्जाय जोगे पय सो हविज्जा ॥

(श्री ब्रह्मवैकालिक सूत्र पु० २ पा० ७)

शराब छोड़ दे, मांस छोड़ दे, विकृति (रस-मुष्ट) भोजन को कम कर, बार बार कायोन्संग, स्वध्याय योग में लीन होजा ।

(१०) भेत्तज्जं पियमंसं देई, अणुनन्ई जो जस्स ।

सो तस्स मत्तलल्लगो, बच्चइ नरयं ए संवेहो ॥

जो घ्राणधर्म में मांस खिलावे या मज्जति दे वह उसका पिछलग्गू होकर नरक में जाता है ।

(११) पुण्णं बीभरं इन्द्रियमत्तसम्भवं अत्तुइयं अ ।

अइएण नरपण्डलं विवज्जलिअं अ सो मंसं ॥१॥

मांस दुर्गन्ध वाला है, बीभन्स है, शरीर के मलों से बना हुआ है, अपवित्र है और नरक में ले जाने वाला है । अनः त्याज्य है । १

सद्यः समूर्च्छितानन्त—जन्तु संतान दूषितम् ।

नरकाज्जनि पापेयं, कोऽश्नीयात् पित्रितं तुषी ? ॥२॥

मांस में क्षण भर में ही अनन्त सूक्ष्म कीटाणुओं का जन्म और विनाश होता है । वह नरक के मार्ग में ले जाने वाला भोजन है । कीन बुद्धिमान ऐसे मांस को खाये ? । २

आमासु अ पक्कासु अ विपिज्जावात्तासु मंस वेसीसु ।

सवयं चिय उववाओ भलिओउ निनोववीवात्तं ॥३॥

(बोध सास्त्र प्रकाश ३ श्लोक ब्रूल व टीका)

मांस कच्चा हो या पकाया हुआ, उसकी हर एक फाँक में निर्वाध रूप से निगोद के जीव उत्पन्न होते हैं । ३

इन पाठों से भगवान् महावीर के आदर्श अहिंसामय जीवन का और उनके द्वारा प्रदत्त अहिंसा के उपदेश का पूरा पूरा परिचय मिल जाता है। ऐसी स्थिति में उनको मांसाहारी मानना, कहना व लिखना मन का, वाणी का तथा लेखनी का दुरुपयोग करना है।

५. औषध प्रदान करने वाली स्त्री का व्यवहारिक जीवन

सिंह मुनि उस औषध को किमी कसाई के यहां से अथवा यज्ञ-स्थल से नहीं लाये थे। वह उसे एक जैन आदिका के घर से लाये थे जिसका नाम था रेवती।

जैनागम में उस समय रेवती नाम की दो स्त्रियों का उल्लेख हुआ है।

(१) एक रेवती थी राजगृही के महाशतक की स्त्री जिसके बारे में कहा गया।

“तएणं सा रेवइ गाहावइणी अंतोमत्तारस्म अलमएणं वाहिणा अभिभुम्भा अट्ट दुहट्ट वसट्ठा काल मामे कालं किच्चा इमी से रयणप्पभाए पुढवीए लोनु एच्चुए नए चउरासीई वासहठिइएमु नेरइएमु नेनइएत्ताए उववण्णा” ।

—(श्री उपासक दशांग सूत्र)

(२) दूसरी रेवती थी मँढिक ग्राम निवासिनी जैन आदिका जिसके सम्बन्ध में इस प्रकार का वर्णन है।

“समजस्य भगवधो महावीरस्स सुलसा रेवइ पामुक्खानं समजोवासियाणं तिन्नी सय साहस्सीधो अट्ठारस सहस्सा उक्कोसिय सप्पोल्लसिण्णं संपया हत्था ।”

—(श्री कल्प सूत्र वीर चरित्र)

“तएणं तीए रेवतीए गाहावइणीए तेणं दब्ब सुद्धेणं जाव दाणेणं सीहे अणगारे सत्तम्मिण्णं समाणे देवाउए णिबद्धे, जहा विजयस्स, जाव जम्म जीविय फले रेवती गाहावइणीए”

—(श्री भगवती सूत्र सं० १५)

सिंह मुनि मृत्योपरांत नरक में जाने वाली राजगृही ग्राम की रेवती के घर से औषध नहीं लाये थे । वह तो मेंढिक ग्राम वाली रेवती से उक्त औषध लाये थे ।

दिगम्बर सम्प्रदाय के विद्वान् भी रेवती (मेंढिक ग्राम वाली) के इस औषधदान की प्रशंसा करते हैं और तीर्थंकर नाम कर्म उपाज्जन करने का कारण यही था, इसको स्पष्ट स्वीकार करते हैं । यथा—

“रेवती श्राविकया श्री वीरस्य औषधदानं दत्तम् । ते-
नौषधिदानफलेन तीर्थंकर नाम कर्मोपाजितमत एव औषधि
दानमपि दातव्यम् ।

(हिन्दी जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय बम्बई की जैन
चरित माला नं० ६ (सम्यक्त्व कौमुदी पृ० ५७)

जो श्रेष्ठ श्राविका है, द्वादश व्रत धारिणी है, मृत्यु उपरान्त देव लोक को जाती है तथा दान से तीर्थंकर नाम कर्म का उपाज्जन करती है, वह रेवती मांसाहार करे या उस तीर्थंकर नाम कर्म के कारण स्वरूप मांस का दान करे, ऐसी कल्पना करना निपट भूलता है ।

६. रोग, औषध और नियमा नियम का विज्ञान

जिस रोगके लिये उक्त औषध लाया गया था, उस रोग का नाम था 'पित्तज्वर'। 'परिणये शरीरे दाह बभूव तिए' का आशय है पित्तज्वर और दाह, जिस में अरुचि, जलन तथा रक्तातिसार मुख्य लक्षण होते हैं। इस रोग को शांत करने के लिये कोला, बिजौरा आदि तरी देने वाले फल, उनका मुरब्बा, पेठा, कबेला, पारावत फल, चतुष्पत्री भाजी, खटाई वाली भाजी इत्यादि प्रशस्त माने जाते हैं। इस रोग में मांस का सक्त निषेध (परहेज) होता है। वैद्यक ग्रंथों में साफ साफ कहा गया है—“स्निग्धं ऊष्णं गुरु रक्त पित्त जनकं वातहंरच” मांस ऊष्ण है, भारी है, रक्तपित्त को बढ़ाने वाला है। अतः इस रोग में मांस सर्वथा निषिद्ध है। इस रोग में कोला और बिजौरा लाभकारी हैं।

(कयदेव निघण्टु, सुश्रुत संहिता)

उपरोक्त कथन से यह निश्चित हो जाता है कि वह औषध मांस नहीं था बरन् तरी देने वाला कोई फल या फल का मुरब्बा था। इन सब बातों को ध्यान में रख कर हम पाठ की शाब्दिक विवेचना अगले अध्याय में करेंगे।



दूसरा अध्याय

हमारे सम्बन्धित विषय का मूल पाठ इस प्रकार है ।

“तत्त्वत्वं वैश्वदेवो वदन्ती मम अष्टाष्ट दुवे
कवोय-सरीरा उवक्खड्डिया तेहिं नो अट्ठो । अत्थि से अन्ने
पारियासिए मज्जारकड् कुक्कुड् मंसए तमाहराहि
एएणं अट्ठो ।” (श्री भगवती सूत्र शतक-१५)

इस पाठ के विचारणीय शब्द ये हैं:—(१) दुवे
(२) कवोय (३) सरीरा (४) उवक्खड्डिया (५) नो
अट्ठो (६) अन्ने (७) पारियासिए (८) मज्जार
(९) कड् (१०) कुक्कुड् (११) मंसए ।

(१) दुवे

यह शब्द ‘कवोय’ की ही नहीं किन्तु ‘कवोय सरीरा’
की भी संख्या बताता है । अतः इसका अर्थ दो कवोय नहीं
बल्कि कवोय के दो मुरब्बे हैं । यदि कवोय का अर्थ पक्षी
विशेष से लिया जाय तो यहाँ दुवे तथा सरीरा शब्दों में
समन्वय नहीं हो सकता क्यों कि पूरा कबूतर नहीं पकाया
जाता और यदि अंगोपांग अलग अलग करके पकाया जाय
तो दो सरीर ऐसी संख्या नहीं रहती । अर्थात् दुवे और
सरीरा इन दोनों शब्दों में एक शब्द निरर्थक हो जाता है ।

यदि कवोय का अर्थ किसी वनस्पति विशेष से
लिया जाय तो यहाँ दुवे और सरीरा इन दोनों का ठीक
समन्वय हो जाता है । कवोय फल का मुरब्बा बना हुआ हो
उसके दो सम्पूर्ण फलों से ‘दो’ संख्या का बोध हो जाता है,
एवं कवोय फल के मुरब्बे के लिये ‘दुवे कवोय सरीरा’ यदि

शब्द समूह का प्रयोग भी सार्थक हो जाता है। अतः इस बात को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि यहां कवोय शब्द का किसी प्राणी (पक्षी) के लिये नहीं वरन् फल के लिये प्रयोग किया गया है। यह बात दुवे शब्द से सिद्ध हो जाती है। अतः इस स्थान पर दुवे शब्द महत्वपूर्ण है।

(२) कवोय

कवोय एक प्रकार की खाद्य वनस्पति है। यह पूरी की पूरी उपष्कृत हो सकती है और बहुत समय तक टिक सकती है। इसके सेवन से ऊष्णता, पित्ताज्वर, रक्तविकार तथा आम्रातिसार आदि रोग शांत होते हैं। कवय का संस्कृत पर्याय 'कपोत' है। कपोत और कपोत से निमित्त शब्दों में अर्थ-वैभिन्न्य होता है जो निम्न व्यूरे से भलि भांति प्रकट हो जायेगा।

कपोत = एक प्रकार की वनस्पति (सुश्रुत संहिता)।

कपोत = पारापतः कलरवः, कपोत, कमेडा, कबूतर।

कपोत = पारीस पीपर (वैद्यक शब्द सिन्धु)।

कपोत = कुष्मांड, सफेद कुम्हेडा, भुरा कोला।

कपोती वृत्ति = सादा जीवन निर्वाह।

कापोती = कृष्ण कापोती, श्वेत कापोती, वनस्पति (सुश्रुत संहिता)

श्वेत कपोती समूलपत्रा मलयितव्या [सुश्रुत सं० प्र० ८२१]

सलीरां रोमशां मृदवीं रसेनेन रसोपमान् ।

एवं ह्य रसाम् चापि कृष्णा कपोति मविज्ञेत् ॥

कौशिकी तरितं तीर्त्वा संश्रयामयास्तु पूर्वतः ।

क्षिति प्रवेशो बाह्मिकं राक्षितो योजनं त्रयम् ।

विज्ञेया तत्र कापोति श्वेता बाह्मिकं मृद्वस्तु ॥

[कापोतिं प्राप्ति स्थानं तुभ्युत]

कपोतक = सज्जी खार (जै० सं० ४३) ।

कपोत वेगा = ब्राह्मी

कपोत चरणा = नालुका

कपोत पुट = घाठ

कपोत बंका = ब्रह्मा, सूर्यफुल्ली

कपोत वर्णा = लायची, नालुका

कपोत सार = सुखं सुरमा

कपोतांघ्री = नलिका

कपोतांजन = हरा सुरमा

कपोतांढोपम फल = निबु भेद

कपोतिका = सफेद कोला—

(निघण्टुरत्नाकर जै० सा० प्र० क्र० ४३)

पारावते तु साराम्बो, रक्तमालः परावतः ।

आ खेतः सार फलो, महापरावतो महान् ॥१३६॥

कपोताण्ड तुल्य फलो ॥१४०॥

[अभिधान संग्रह निघण्टु]

कपोत = सज्जी खार [भाव० प्र० निघण्टु]

पारावतपदी = माल कागनी

कपोत चरणा = नलिका

पारावत पदी = काकजंघा [भा० प्र० निघण्टु]

उपरोक्त शब्दों के अर्थ से 'कपोत' शब्द की 'वनस्पति' में व्यापकता पूर्वकतः स्पष्ट हो जाती है ।

कशोत का सोवा अर्थ है एक प्रकार की वनस्पति, पारोस पोपल, सफेद कुम्हड़ा (पेठा) और कबूतर । इनका वर्णन वैद्यक ग्रन्थों में इस प्रकार हुआ है ।

(i) पारापत के गुण दोष—

पारापतं सुमधुरं रुच्यमत्यग्निवातनुत् (सुश्रुत संहिता)

(ii) पारिसपीपल, गजदंड के गुण दोष—

पारिशो दुर्जरः स्निग्धः कृमिशुक्रकफ प्रदः ॥५॥

फलेऽम्लो मधुरो मूलो, कषाय स्वादुः मज्जकः ॥६॥

(भाव प्रकाश वटादि वर्ग)

(iii) कोला, कोंहड़ा, पेठा, खबहा, काशीफल के गुण दोष—

पित्तघ्नं तेषु कुष्मांडं बालं मध्यं कक्षापहम्,

शुक्लं लघूप्लवं सलारं दीपनं वस्ति शोचनम् ॥२१३॥

तत्रं दोषहरं हृद्यं पथ्यं च तो विकारिणम् ॥२१४॥

पेठा ऋण्य, दीपक वस्ति शोचक और तत्रंदोष हर है

(सुश्रुत स० १६ कल वर्ग)

लघुकुष्मांडकं क्कं मधुरं ग्राहि शीतलम् ।

दोषघ्नं रक्तपित्त विघ्नं मल स्तम्भकरं परम् ॥

(छोटा कोला ग्राही, शीतल, रक्त-पित्त नाशक तथा लरोधक है)

कुष्मांड शीतलं वृष्यं स्वादु पाकरतं नुह ।

हृद्यं क्कं रक्तस्यन्धि श्लेष्मलं घात पित्त विज्जु ॥

कुष्मांडनाकं नुह तन्निपात ज्व राम शोका मित दाह हरि ॥

(कोला—शीतल, पित्त-नाशक, ज्वर, ग्रामदाह को शांत करने वाला है) (कयदेव निष्पट्ट)

कुष्माण्डं स्यात् पुष्पकं पीतपुष्पम् बृहत्फलम् ॥५३॥

कुष्माण्डं बृहत् पुष्पं गुरु पितास्त्र वातघ्नम् ।

बालं पितामहं शीतं मध्यमं कफकारकम् ॥५४॥

बृहत् नाति हिमं स्वादु सकारं दीपनं लघु ।

वस्ति शुद्धिकरं चेतो रोग हृत्सर्वं दोषघ्नम् ॥५५॥

कुष्माण्डो तु भृशं लघ्वी, कर्कार रपि कीर्तिता ।

कर्कारं प्राहिली शीता रक्त-पित्त-हरि गुरुः ॥५६॥

पक्षा त्रिगुणमी, सकारा कफ वातघ्नम् ॥५७॥

(कोला-पित्तरक्त और वायुदोष नाशक है । छोटा कोला पित्तनाशक, शीतल और कफ-जनक है । बड़ा कोला उष्ण, मीठा, दीपक, वास्ति-शुद्धि कारक, हृदयरोग नाशक तथा सर्वदोषहारी है । छोटा कोला ग्राह्य, शीतल, रक्तपित्त दोष नाशक और पक्का हो तो अग्नि वर्धक है)

(भाव प्रकाश निघण्टु-शाक वर्ग)

मांस के गुण और दोष-

स्निग्ध उष्णं गुरु रक्तपित्त जनकं वात हरं च ॥

सर्वं मांसं वात विघ्नंति बृहत् ॥

मांस रक्त व्याधियों तथा पित्तविकारों को बढ़ाने वाला है

अब यदि महावीर स्वामी के दाहरोग पर विचार किया जाय तो यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि कपोतपक्षी का मांस रोग का निवारण नहीं कर सकता । इसमें कपोत वनस्पति, पारिस तथा कोलाफल आदि अत्यधिक उपयोगी हैं । साथ साथ यह तथ्य भी सिद्ध हो जाता है कि रेबती

श्राविका के पास जो 'दुवे कवोय सरीरा' थे वह कोई पक्षी नहीं वरन् कोला ही थे ।

भगवती सूत्र के प्राचीन चूर्णीकार तथा टीकाकारों ने भी उक्त पाठ का अर्थ 'कुष्माण्ड' फल ही लगाया है । यथा—

कपोतकः पक्षी विज्ञेयः तद्वद् ये फले वर्णसाधर्म्यात् ते कपोते—
कुष्माण्डे ह्रस्वे कपोते कपोतके ते च ते शरीरे वनस्पति जीव वेहत्वात् कपोत
शरीरे । अथवा कपोतक शरीरे इव भूसरवर्ण साधर्म्येण कपोतक शरीरे
—कुष्माण्ड फले एव । ते उपस्कृते संस्कृते । तेहिना अट्टोत्ति बह्वपायत्वात् ।

[रंग की समता के कारण कुष्माण्ड फल को ही कपोत नाम से पूकारा जाता है । रेवती श्राविका ने उनको संस्कार देकर रख छोड़े थे ।)

(आ० अभयदेव सूरि कृत भगवतीसूत्र टीका पृ० ६६१)

(आ० श्री दान शेखर सूरि कृत भ० टीका पृ०)

कुष्माण्ड फल का मुरब्बा दाह आदि रोगों को शांत करता है, आज भी यह बात ज्यों की त्यों खरी उतरती है । आज भी आगरा आदि स्थानों पर कुष्माण्ड का मुरब्बा, पेठा इत्यादि ग्रीष्म ऋतु में अधिक प्रयोग किया जाता है । मेरठ जिले में भी सफेद कुम्हड़ा जिसका दूमरा नाम कवेलापेठा इत्यादि है, उन्हें तैयार करने में बहुत प्रयोग किया जाता है । सारांश यह है कि कुष्माण्ड का मुरब्बा, पेठा, पाक आदि गर्मी को शांत करने वाले हैं । और रेवती श्राविका ने भी भगवान महावीर के दाह रोग की शांति के लिये 'दुवे कवोय सरीरा' अर्थात् कुष्माण्ड फल का मुरब्बा बना कर रखा था । यहाँ 'कवोय' शब्द कुष्माण्ड फल का ही द्योतक है ।

(३) सरीरा

‘सरीरा’ शब्द कबोय से निष्पन्न पुलिग वाले द्रव्य का द्योतक है। यदि यहां ‘सरिराणि’ शब्द का प्रयोग होता तो इसका अर्थ ‘पक्षी शरीर पर भी करना पड़ता क्योंकि नपुंसक शरीर शब्द ही शरीर या मुरदे के अर्थ में आता है, किन्तु शास्त्राकार को वह भी अभीष्ट नहीं था। अतः उसने यहां ‘सरिराणि’ का प्रयोग नहीं किया है। शास्त्रकार ने यहां पुलिग में ‘शरीरा’ शब्द का प्रयोग किया है और उसका अर्थ मुरम्बा या पाक ही है। पुलिग का प्रयोग होने के कारण ही इतना अर्थ भेद हो जाता है। आगे आने वाला पुलिग शब्द ‘अन्नं’ भी इस मत की पुष्टि करता है।

दूसरी बात यह है कि मांस के लिये सीधे जाति-वाचक शब्द ही प्रयुक्त होते हैं; उनके साथ ‘शरीर’ शब्द नहीं लगाया जाता। “विपाकसूत्र” में मांसाहार का वर्णन है मगर किसी जातिवाचक संज्ञा के साथ शरीर शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। हां, वनस्पति के साथ ‘काय’ शब्द मिलता है। यथा—‘वनस्पति-काय’ जिसका अर्थ है वनस्पति रूप, वनस्पति शरीर ऐसा। वास्तव में सरीरा शब्द वनस्पति के साथ उचित संगति पाता है।

प्रस्तुत पाठ में कबोय के साथ जो सरीरा शब्द है वह यहां विशेष्य के रूप में ही है। इसलिये यह बात निश्चित है कि यहां सरीरा शब्द का अर्थ मुरम्बा या पाक ही है।

तीसरी विचारणीय बात यह है कि 'कवोय सरीरा' के पूर्व 'दुवे' शब्द का प्रयोग कर उनकी संख्या बताई गई है। यदि मांस की ओर संकेत होता तो टुकड़ों का बोध करने वाले शब्द विद्यमान होने चाहिए थे किन्तु यहां टुकड़ों का कोई प्रसंग नहीं है। इस कारण मुरब्बे का बोध होना ही युक्ति संगत है। सारांश यह है कि यहां 'सरीरा' शब्द मुरब्बे के लिये तथा 'दुवे कवोय सरीरा' शब्द 'दो कुष्माण्ड के मुरब्बे' के लिये ही लिखे गये हैं।

(४) उवक्खडिया

'उवक्खडिया' शब्द पुलिग में है तथा संस्कार का सूचक है। उपासक दशांग और त्रिपाक सूत्र आदि जिनागमों में मांस के लिये "भज्जिये," "तलिए" शब्दों का प्रयोग हुआ है, 'उवक्खडिया' का नहीं। भगवती सूत्र में भी प्रशस्त भोजन के लिये ही 'उवक्खडिया' शब्द प्रयोग में आया है। इसका आशय यह है कि मांस के संस्कारों में 'उवक्खडिया' शब्द प्रयोग में नहीं आता। प्रस्तुत स्थान में जो 'उवक्खडिया' का प्रयोग हुआ है वह भी 'कवोय-सरीरा' के अर्थ कुष्माण्ड का पक होने का ही अनुमोदन करता है।

(५) नो अट्ठो

'नो अट्ठो' शब्द निषेध के लिये है। रेवती आशिका ने भगवान् महावीर के निमित्त कुष्माण्ड पाक बना कर रखा था, किन्तु 'निमित्तदोष' लग जाने के कारण भगवान् ने श्री सिंह भुजि को उसे न लाने का निर्देश किया। जहां

‘निमित्त-दोष’ वाला आहार ग्रहण करना भी निषिद्ध है, वहां मांसाहार की बात मानना तो दुस्साहस ही है ।

(६) ‘अन्ने’

अन्ने शब्द ‘कुक्कुड मंसए’ का सर्वनाम है और इसका अर्थ है अन्न । ‘अन्ने,’ ‘कवोय-सरीरा’ एवं ‘कुक्कुड मंसए’ तीनों शब्द पुल्लिङ्ग में हैं । पुल्लिङ्ग होने के कारण वे वनस्पति विशेष के ही परिचायक हैं, ‘अन्ने’ शब्द से यही प्रमाणित होता है ।

(७) पारियासिए

पारियासिए शब्द बिजौरा पाक का विशेषण है । इसका अर्थ होता है अधिक पुराना [अधिक समय का]

एक दिन की बासी वस्तु के लिये ‘पारियासिए’ शब्द का प्रयोग नहीं बल्कि ‘पज्जुसिए’ का प्रयोग होता है । ऐसी स्थिति में यदि यहां किसी भी प्रकार के मांस का उल्लेख होता तो यथानुकूल ‘पज्जुसिये’ शब्द का प्रयोग होना चाहिये था किन्तु यहां तो मांस का प्रसंग ही ठीक नहीं बैठता, क्यों कि बासी मांस तो रोग की वृद्धि करता है और इसको दाह रोग के निवारणार्थ व्यवहार में लिया जाय यह बात मानी ही नहीं जा सकती । अतः ‘पारियासिए’ का विशेष्य मांस नहीं है यह निर्विवाद कहा जा सकता है ।

इस स्थान में ‘अत्थि’ शब्द के साथ ‘उवक्खडिया’ अथवा ‘अज्जिए’ शब्द प्रयुक्त नहीं हुए हैं । इस कारण वह वस्तु मांस नहीं है वरन् लम्बे समय तक रहने वाली कोई वस्तु है अर्थात् एक प्रकार का पाक है ।

बृहत्संहितासूत्र—में अधिक काल तक टिकने वाले पदार्थ
घी, तैल आदि—के सम्बन्ध में 'पारियासिए' का प्रयोग हुआ
है। इस हिसाब से यहां पुराना [बिजौरा पाक] के अर्थ में
"पारियासिए" शब्द का प्रयोग सर्वथा उचित है और युक्ति
युक्त भी।

(८) मज्जार

मज्जार पदार्थों में शीतलता की भावना या पुट देने के
लिये प्रयुक्त होने वाली वस्तु है। जिसका प्रभाव गर्मी
(उष्णता, दाह) इत्यादि रोगों को शांत करने में उपयोगी है
मज्जार का संस्कृत पर्याय 'मार्जार' होता है। मार्जार और
मार्जार से बने हुए कतिपय शब्दों का अर्थ भिन्न होता है।
यथा—

मार्जार = अभ्रसह—बोयाण—हरितग—~~चिह्नित~~—तण—
वत्युल,—चोरग, 'मंजार' पोई—चिल्लीया, एक प्रकार की
वनस्पति, भाजी—[भगवती सूत्र शतक—२१]

मार्जार = वत्युल, पोरग, "मज्जार" ~~चिह्नित~~,
पालक्का। एक प्रकार की वनस्पति।

[पन्नवणा सूत पद १ हरित विभाग]

मार्जार-विरालिकाऽभिधानो वनस्पति विशेषः।

(भगवती श० १५ टीका)

विहारी हवन विहारी औरविहारी च।

नक्षत्राणि विद्या वृद्धा वृक्षवस्ति विद्यालिका ॥

बिडालिका = एक प्रकार की शीषधि ।

(आचारंग सूत्र अ० ५ उ० २ गा० १८)

बिडालिका = एक प्रकार की शीषधि ।

(आचारंग सूत्र सू० ४५ पृ० ३४८)

बिडालिका = वृक्षपर्णी

—(क० स० श्री हेमचन्द्र सूरि कृत निघण्टु संग्रह)

बिडालिका = स्त्री, भूमि, कूष्मांडे, पेठा, भोंय कोला ।

—(वैद्यक शब्द सिन्धु)

बिराली = एक तरह की बेल ।

—(पन्नवणा सूत्र बल्ली पद १ गा० ४४)

बिडाली = स्त्री, भूमि, कुष्मांडे, पेठा, भुयकोला ।

—(शब्दार्थ चिन्तामणि कोष)

मांजरीर = रक्त चित्रक ।

मांजरीर = वायुविशेष ।

बिल्ली = वनस्पति विशेष ।

(पन्नवणा प० १ गा० १६-३७)

मांजरीर—मांजरीरः स्यात् लटवांश—बिडालयोः, लट्टी वस्तु

क० स० श्री हेमचन्द्र सूरि कृत हेमी जनेकार्य नाम माला ।

वैद्यक शब्द सिन्धु जैन जने प्रकाश वर्ष-५४ अ० १२ पृ ४२७)

मांजरीर = इगुआं, तापस, तरु मांजरीर । इन्दुगी का पेड़ जिसके तेल में बिजौरा जंग हरडे बगैरह तले जाते हैं ।

[—हेमी निघण्टु संग्रह]

मार्जार = बिडाल ।

मार्जारी, मार्जारिका, मार्जारांघ मुख्या = कस्तूरी ।

मार्जारगन्धा, मार्जार गन्धिका, एक प्रकार हरिण

—[श्री जैन सत्य प्रकाश व० ४ अ० ७ क्र० ४३]

उपरोक्त शब्द और इनके अर्थ से 'मार्जार की वनस्पति वर्ग में व्यापकता का पूर्ण परिचय मिल जाता है ।

अब यदि भगवान् महावीर के दाहरोग के विषय में विचार किया जाय तो यह स्वीकार करना होगा कि इस में बिडाल की तो कोई उपयोगिता ही नहीं है । इसके विपरीत मार्जार वनस्पति खट्वांश या तेल लाभदायक है । इस प्रकार उक्त रोग पर मार्जार वनस्पति खटांवश या तेल की भावना वाली औषधि ही उपचार स्वरूप दी गई थी । क्योंकि दाह-रोगों में खटाई आदि उपयोगी है ।

रोग में मार्जार नामक वायु विकार विद्यमान था । इस विकार की शांति के लिये जो संस्कार दिया जाय वह 'मर्जार कृत' कहलाता है, इस प्रकार यहां मार्जार का अर्थ वायु भी है । भगवती सूत्र के प्राचीन मेधाविराट् ने भी इस शब्द का अर्थ वायु तथा वनस्पति ही लगाया है यथा—

मार्जारो वायुविशेषः तनुपन्ननाय कृतम्-मार्जार-कृतम् ॥

अपरे त्वाहुः—मार्जारो बिडालिकाभिधानो वनस्पतिविशेषः तेन कृतं भावितं वद् तत् ।

[आ० श्री अमरदेवपुरि कृत भगवती टीका पृष्ठ—१११]

[आ० श्री वागज्जकारि कृत प० टीका पृष्ठ]

अर्थात् मार्जार वायु को दबाने के लिये जो औषध-संस्कार दिया जाय वह 'मार्जार कृत' माना जाता है और मर्जार,

अर्थात् विडालिक नामक वनस्पति, से जो संस्कार किया जाय वह भी 'मार्जार कृत' माना जाता है ।

इस सब व्याख्या का आशय यह है कि यही 'मार्जार' शब्द वनस्पति का द्योतक है ।

(६) कड़ए

कड़ए शब्द पुल्लिङ्ग है, संस्कार का सूचक है, 'मार्जार' शब्द से सम्बद्ध है तथा 'मंसए' का विशेषण है । इसका संस्कृत पर्याय 'कृतकः' है ।

यदि यही हड़य, हए, वहिए आदि शब्दों का प्रयोग होता तो इसका अर्थ 'विडाल न से मारा हुआ' भी निकल सकता था परन्तु यहाँ 'कड़ए' का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है 'मारजार से वासित भावित' अर्थात् 'संस्कारित' । इसके अतिरिक्त विडाल कुकड़ा को मारकर छोड़ दे, ऐसी अप्रसूय तथा घृणित वस्तु को रेवती श्राविका उठाले तथा दाह रोग में उसका प्रयोग उचित मान लिया जाय यह सब मान्यताएं अप्रसांगिक, वास्तविकता से दूर तथा कपोल-कल्पित जंचती हैं । और फिर 'मंसए' और 'कड़ए' का पुल्लिङ्ग प्रयोग भी 'मांस' का पक्षपोषण नहीं करता तथा इस मान्यता को निराधार बना देता है ।

श्रीषधि विज्ञान में संस्कारित वस्तुओं के लिये 'दधिकृत', 'राजीकृत', 'माजारीकृत' इत्यादि का प्रयोग होता है जिसका अर्थ वही से संस्कारित, राई से संस्कारित तथा विडालिका (श्रीषधि) से संस्कारित होता है । तात्पर्य यह है कि यहां

‘कडा’ का अर्थ ‘संस्कारित’ और ‘मार्जार कडा’ का अर्थ मार्जार वनस्पति से संस्कारित (भावना वाला) ठीक बैठता है ।

(१०) ‘कुक्कुट’

‘कुक्कुट’ एक प्रकार की खाद्य वनस्पति है जो कि बहुत दिनों तक टिक सकती है । इसके सेवन से गर्मी, रक्तदोष, पित्तज्वर, ग्रामातिसार आदि रोग शान्त होते हैं इसका संस्कृत पर्याय ‘कुक्कुट’ है । कुक्कुट के कतिपय तद्भव शब्द तथा उनके अर्थ उदाहरणार्थ हम नीचे प्रस्तुत करते हैं :—

कुक्कुट — श्रीवारकः क्षितिबरो वितन्तुः कुक्कुटः क्षितिः ।

श्रीवारक, चतुष्प्री— (हेमी निघण्टु संग्रह)

कुक्कुटी—कुक्कुटी, पूरणी, रत्नकुसुमा, बुलबुलभी ।

पूरणी वनस्पति— (हेमी निघण्टु संग्रह)

कुक्कुट—क्षितिवारः क्षितिवरः स्वस्तिकः क्षुनिचक्षकः ॥२६॥

श्रीवारकः क्षुचिपत्रः, वर्णकः कुक्कुटः क्षिती ।

आङ्गोरीसहस्रः पर्वः चतुर्वर्ण ईतीरित ॥३०॥

साकं जलादिभिः देशे चतुष्प्रीति चोच्यते ।

अर्थः—चउपत्तिया—भाजी—वनस्पति ।

(भाव प्रकाश निघण्टु, शाकवर्गं गालिग्राम निघण्टु भूषण शाक वर्ग)

कुक्कुट—कुक्कुटः क्षास्मलिवृक्षे— [वैद्यक शास्त्र तिवृ]

कुक्कुट = बिजौरा [भगवती सूत्र टीका]

मधुकुक्कुटी—की. मातुलुङ्गवृक्षे, बिजौरा, [वैद्यक शास्त्र तिवृ टीका]

सत्यभामा और भामा—इनदोनों शब्दों का एक ही अर्थ है। इसी प्रकार मधुकुक्कुट और कुक्कुट भी समानार्थ हैं।

कुक्कुट = घास का उल्का, भ्रम की चिंगारी, शूद्र और निषादन की वर्णसंकर प्रजा।

—(जै० स० प्र० व० ४ अ० ७ क० ४३)

कुक्कुट = (१) कोषंडे (२) कुरडु (३) सांवरी। इसके अतिरिक्त कुक्कुट पादप, कुक्कुट पादी, कुक्कुट पुट, कुक्कुट पेरक, कुक्कुट मंजरी, कुक्कुट मर्दका, कुक्कुट मस्तक, कुक्कुट शिख, कुक्कुटा, कुक्कुटांड, कुक्कुटा—भकुक्कुटी, कुक्कुटोरण आदि वैद्यक शब्द हैं।

—(निघण्टु रत्नाकर, जै० स० प्र० क० ४३)

कुक्कुट = मुर्गा, वनकमुर्गा।

उपरोक्त शब्दों से स्पष्ट है कि 'कुक्कुट' शब्द वनस्पति में बहु व्यापक है।

वैद्यक ग्रन्थों में कुक्कुट वनस्पति यानि 'चउपत्तिया भाजी' तथा 'बिजौरा' के गुण दोष का वर्णन निम्न प्रकार हुआ है।

(१) चउपत्तिया भाजी—

सुनिषण्णो हिमो वाही, मोह दोष प्राणवहो ॥३१॥

अधिवाही तपुः स्वादुः कषायो रुज दीपनः ॥

बुध्यो रुज्यो ज्वररन्तात्तमे, ज्वर प्रसुत् ॥३२॥

अर्थात् सुनिषण्ण शीतल, त्रिदोषनाशक, दाहशामक, सुपाच्य, दीपक और ज्वरशामक है।

—(भावमिश्र कृत भावप्रकाश निघण्टु, शाक वर्ग)

पारापन फल का गुण भी दाह नाशक, ज्वर नाशक व शीतल बताया है ।

चौराष्टिया भाजी दाह नाशक, ज्वरहारी, शीतल व मल शोधक है ।

खटाश—भाजीनां शाक दही "नाखीने खाटां करवानो रिवाज जाणी तो छे । एटले खटाशनी जग्याए दही लइए तो भाड़ाना रोगमां अत्यंत फायदा कारक छे । घ्रात्री रोने घ्रा चीजो प्रभु मश्वोर स्वामी ना रोगनी दृष्टिए उपयोगी छे ।

—(महो० काशीविश्वनाथ प्रह्लाद जी व्यास, साहित्याचार्य, काव्य साहित्य विशारद, मीमांसा-शास्त्री, एल०ए०एम० लिखित शास्त्रीय खुलासो, जैनधर्म प्रकाश पु० ५४ अ० १२ पु० ४२७)

(२) बिजोरा—

इवात काला ऽरुचिहरं तृष्णाघ्नं कण्ठशोधनम् ॥१४८॥

सज्जम्नं दीपनं हृद्यं मातुलुङ्गमुदाहृतम् ॥

त्वक् तिक्ता दुर्बरा तस्य, वातकुम्भिकापहा ॥१४९॥

स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं, कर्तं ऽतृप्तितान्त्रि ॥

जेष्णं झूलानितस्रवि— कारोचकनाशकम् ॥१५०॥

दीपनं लघु सघ्राहि, गुस्मासोर्ध्नं तु केसरम् ॥

झूलानितविषयेषु, ऽतृप्तस्त्रोपविष्यते ॥१५१॥

अरुची च विरोधेत्य, मण्डे ऽग्नौ कफ मारुते ॥

बिजोरा—तृष्णा शामक, कण्ठ शोधक, तथा दीपक है ।

बिजौरा का मांस (गूदा) शीतल, वायुहर तथा पित्तहर है ।

—(सुश्रुत संहिता)

त्वक् तित्तकदुका स्निग्धा, मातुलुंनस्य वातजित् ॥

बृहत् मधुरं मांसं, वातपित्तहरं गुड ॥

बिजौरा का मांस (गूदा)—वीष्टिक, मधुर, वातहर और पित्तहर है ।

(बाम्भट्ट)

बीजपुरो मातुलुंनो रक्तः कमदूरकः ॥

बीजपुरफलं स्वादु, रसे अम्ल बीषमं लघु ॥१३१॥

रक्तपित्तहरं कण्ट—बीज्य हृदय शोथनम् ॥

स्वास कास श्वाहुरं हृत् तृष्णाहरं स्मृतम् ॥१३२॥

बीजपुरो अरः प्रोक्तो मधुरो मधुकर्णदी ॥

मधुकर्णिका स्वादी रोचनी शीतला गुः ॥१३३॥

रक्तपित्त शय स्वास कास हिक्का भ्रमा श्वाहा ॥१३४॥

बिजौरा—रक्तपित्त नाशक है, कण्ट-जिह्वा-हृदय शोधक है, स्वास कास तथा अर्शस का दमन करता है व तृष्णाहर है ।

मधु बिजौरा शीतल तथा रक्तपित्त नाशक है ।

—(भाव प्रकाश निषट्ट फल वर्ग)

मुर्गे का मांस उष्णवीर्य है । यह दाह को बढ़ाने वाला है ।

—(सुश्रुत संहिता)

उक्त बातों को दृष्टि में रख कर विचार किया जाय तो यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ रोग निवारणार्थ मुर्गे का प्रयोग युक्ति संगत नहीं है तथा स्थिति के सर्वथा प्रतिकूल

पड़ना है 'चउ पत्तिया भाजो' और बिजौरा' ही उपयोगी है। अतः रेवती श्राविका के घर में जो 'कुक्कुड मांसक' या वह बिजौरा-पाक के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हो सकता।
यथा—

वाच्यारो वानुष्मिन्तः पञ्चमस्य कृतम्—संस्कृतम्— वाच्यार-
कृतम् । अथरे त्वाहुः वाच्यारो विद्याविद्याविधानो वानुष्मिन्तः विज्ञेयः तेन
कृतं भाषितं यत् तत् तथा किं तस्मिन्नाह 'कुम्भकृतं वाच्यं' कीदृश्वरकं
कटाहं घ्राहुराहिति निरवकाशत्वात् पक्षगं मोहति वाच्यं कीदृश्वरकं विज्ञेयं
यन्मतिं सिक्कने उपरिक्तं सत तस्मादवकाशतारयतीत्यर्थः ।

(ग्रा० श्री अमयदेवसूत्रि कृत भगवती टीका पृ० ६६१)

(आ० श्री दानशेखर सूरि कृत भ० टीका)

आशय यह है कि 'बिजौरा पाक' को ही 'कुक्कुटवासिक' की संज्ञा मिली है और यही (बिजौरा पाक ही) रेवती भाविका के वहां तैयार था ।

(११) मंथन

‘ममए’ शब्द बिजौरा से निष्पन्न, पुंल्लिङ्ग, द्रव्य का घोटक है। इसका संस्कृत पर्याय ‘मांसक’ होता है। मांस मांसक और उसके तदभव शब्दों का अर्थ इस प्रकार है।

मांस (नपुंसक लिंग) गदा, फलगरभ, फांक

मांसक (पृथ्वीग) पाक, गुदा

मांस (नपुंसकलिंग) मांस, गर्भ

मांसं फला (स्वी मिय) जटामांसी भूत जटा, बालछद्म
धनस्पति ।

—[भाव प्रकाश निषण्ट, कर्पूरादि वमं श्लो० ८६]

मांस फल [स्त्रीलिंग] मांमामिव कोमलं फलं यस्याः ।

आलु, बैंगन, भाटा —[शब्द स्तोम महानिधि],

रक्त बीज, मूंगफली-[भाव प्रकाश पारिभाषक शब्द माला]

इन ग्रंथों से यह सिद्ध होता है कि मांस शब्द मांस का द्योतक है तथा फल के गर्भ का भी द्योतक है किन्तु मांसकः शब्द से तो पाक का ही बोध होता है। और यदि भगवान् महावीर के दाह-ज्वर रोग के संदर्भ में इस शब्द पर विचार किया जाय तो भी मांस का अर्थ पाक ही उचित बैठता है। देखिये —

(१) स्निग्धं उष्णं गुड रक्तपित्तजनकं वातहरं च मांसं ॥

सर्वं मांसं वातादिभिः सिद्धम् ॥

मुर्गे का मांस ऊष्ण वीर्य है। अतः यहाँ मांस का प्रयोग सर्वथा निषिद्ध हो माना जाता है।

(२) प्राचीन समय में फलगर्भ और बीज के लिये क्रमशः मांस और अस्थि का प्रयोग किया जाता था। जिनागमों तथा वैद्यक ग्रंथों से इस कथन के सम्बन्ध में अनेक उद्धरण उपलब्ध हो सकते हैं जैसे—

विष्टं स—अंसकडाहं एवाहं हवन्ति एव जीवन्ति ॥६१॥

टीका—‘अंसं सर्वसकडाहं’ ति—सर्वांसं सविरं तथा कडाह एतानि प्रीति एकस्य जीवस्य भवन्ति—एकजीवात्मकानि एतानि प्रीति भवन्तीत्यर्थः ॥

—(श्री पन्नावणा सूत्र पद १ सू० २१ पृ० ३६-३७)

से किं तं क्वक्षा ? क्वक्षा बुबिहा पक्षता, तं जहा-एगद्विषा य
बहुबीयगाय से किं तं एगद्विषा ? एगद्विषा अरुणबिहा पक्षता, तं जहा—

निबं य जंबु कोसकं, साल अंकोल वीलु सेलू य ।

अस्तद मोयद मालुय, बडल पलासे करंजे य ॥१२॥

पुत्तंजीवय ऽरिद्वे, बिभेलए हरिदए य भिस्लाए ।

उं बेभरिया जोरिए, बोवन्ने धायद पियाले ॥१३॥

पुदय निब करंजे, सुण्हा तह सोसबा य असणे य ।

पुष्पाम एग कक्के, सिरिबण्णी तहा असोने य ॥१४॥

जेयावण्णे तहप्यगारा । एएसि एं मूला बि अस्संलिग्ग जीविया,
कंदा बि खंदा बि तया बि सात्रा त्रि पशवा त्रि, पत्ता पत्तेयजीविया,
पुष्का अरुणजीविया, फला एगद्विषा ॥ से तं एगद्विषा ॥

(पन्नावणा सू० पद० १ सू० २३ पृ० ३१,

जोवाभिगम सूत्र, प्रति १ सूत्र २० पृ० २६)

“त्वक्” तिक्ता बूर्जरा तस्य वातकामककाञ्च ।

स्वाहु शीतं गुह स्निग्धं “मांसं” मासपित्तजित् ॥

(सुश्रुत संहिता)

‘त्वक्’ तिक्तकटुका स्निग्धा मातुलुंगस्य वातजित् ।

बृहत्तं अचरं “मांसं” वातपित्त—हरं गुह ॥

(सुश्रुत संहिता)

पूतना स्विमती सूक्ष्मा क्वचिता मांसला भृता ॥८॥

(भाव प्रकाश निघण्टु रितिक्यादि वर्ग)

मांस फल = बैंगन

(शब्द स्तोम महानिधि)

इस प्रकार मांस का अर्थ गूदा भी होता है ।

नपुंसक लिंग वाला ‘मांस’ शब्द ही ‘मांस’ वाचक है । किन्तु
पुल्लिग शब्द मांस वाचक नहीं है । यहाँ तो मांस शब्द पुल्लिग में

है । कोई पंडितमन्य भाषा शास्त्री भ्रमित तथा त्रुटिपूर्ण ग्रंथ न कर बैठे, ऐसी सम्भावना की ही आवृत्ति रोकने के लिये यहां स्पष्टतः पुस्तिक का प्रयोग किया गया है । इस पर भी कोई यहां इस शब्द का ग्रंथ मांस से लगाये तो इसको मनमानी ही कहा जायगा । तथ्य यह है कि पुस्तिक होने के कारण यहां 'मांस' का ग्रंथ मांस नहीं, बल्कि 'पाक' है । भगवती सूत्र के प्राचीन चूर्णीकार व टीकाकारों ने भी 'कुक्कुट मांसक बीज पुरकं कटाहं' लिखकर 'मांस' का ग्रंथ 'पाक' होने की पुष्टि की है ।

अध्याय तीसरा

पिछले दो अध्यायों में हमने काल परिस्थिति, ग्रंथ पद्धति तथा औषध विज्ञान को आधार मान कर वेदावस्था पाठ की विनाश व्याख्या की है । हम यहां स्पष्ट कर देना चाहते हैं यदि इन विचार बिन्दुओं की स्थापना किये बिना हम किसी पाठ का ग्रंथ लगा लें तो उस में अशुद्धि रह जाने की सम्भावना है । ऐसी ही अशुद्धि भगवती सूत्र में उल्लिखित भगवान् महावीर द्वारा रुग्णावस्था में औषध-मिक्षा सम्बन्धित पाठ का ग्रंथ करते समय हो गई है । हम पाठ और उसका ठीक ग्रंथ नीचे दे रहे हैं :-

तत्स्थानं रेवती महावह्निर्गम्य कृत्वा दुवे कवोय-
सरीरा उपचक्षिष्या, तेहिं नो अदृष्टो । अस्मि से अन्ने
परिचरन्ति यन्महार कट्टं कुक्कुटमंसं तथाहराहि
कथं अदृष्टो ।

अर्थ—गाथापति को पत्नी रेवती ने वहां मेरे निमित्त दो कुम्भाडपाक बना कर रखे हैं। वह काम के नहीं हैं। किन्तु उसके वहां दूसरा विशेष पुराना और विराली वनस्पति की भावना वाला बिजौरे का पाक है। उसे ले आओ वह काम का है।

ऊपर के पाठ में प्राणीवाचक औपधि के स्वरूप की व्याख्या की गई है। एक पाठ विशेष पर ही वह निर्धारित बिचार-बिन्दु लागू होते हो, ऐसी बात नहीं है। ऐसे कई उद्धरण उदाहरणार्थ प्रस्तुत किये जा सकते हैं कि जहां प्राणीवाचक शब्द औपधि-स्वरूप प्रयुक्त हुए हैं और यदि उनका अर्थ उपरो तौर (Face Value) पर किया जाय तो हास्यास्पद तथा भ्रमात्मक (Mis Leading) हो जायगा। यथा—

ब्रह्माणं चक्रपाणिं कुसुमशरिपुं वैष्णवं पेशयित्वा
क्षीरेणाज्येन सम्यक् समधृतमधुना लेपयेत् तां शिलां च
लिप्त्वा क्लृप्त्वा समस्ताद् भवति यदि शिला प्रापिता चक्राश्रं
जानियात् तत्र गर्भे फलपतिरथवा वृश्चिको वाथ गोघा।३२।

अनन्तशयनम् संस्कृत ग्रन्थावली का ग्रंथांक ७५ त्रिवेन्द्रम् का
कुमार मुनि कृत शिल्परत्न भा० १ प्र० १४ श्लो० ३२।

Apply to the Agent for the sale of Government Sanskrit Publication Triveudrum.

उक्त श्लोक कुमार मुनि के शिल्परत्नग्रंथ में आया है और इसमें उन्होंने विचित्र शब्दों से जीव-विज्ञान बताया है। इस श्लोक का अर्थ करते समय बड़े से बड़ा शास्त्रपारंगत भी विचार

में पड़ जायेगा तथा बड़े से बड़ा न्यायालय भी इस पर निर्णय देता हुआ 'किर्तव्यविमूढ़' हो जायगा क्योंकि स्थूल बुद्धि वाला तो व्यक्ति तत्काल इस का अर्थ 'ब्राह्मण, कृष्ण, कामदेव व विष्णु को पीसकर' इत्यादि ही करेगा । परन्तु जीव-विज्ञान व निष्पट्ट आदि शास्त्रों का आधार लेकर इसका वास्तविक अर्थ किया जा सकता है ।

इस प्रकार हमारी व्याख्या के प्रकाश में यह निःसंकोच कहा जा सकता कि भगवान् महावीर ने औषधि-स्वरूप मांसाहार का प्रयोग नहीं किया । उन्होंने बिजौरा-पाक का सेवन किया था जिससे उनका रोगदाह शांत हुआ ।

यो विश्व वेद विश्वं जगन् जलनिधि र्भगिन् पारवृक्ष्वा ।

पौषधिरऽदिरुद्धं वचनमन्यमं निष्कलं वरीयम् ॥

तं वदे साधुचन्द्रं सकल गणनिधिं ध्वस्त बोधद्विचं त ।

मुच्यं वा वर्तमानं ज्ञतवत्तनित्वं केशवं वा शिवं वा ॥

(कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि)

॥ जयउ जिखिंद वर सासबपः ॥

